अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता

स्नातक भाग-3
हिन्दी (प्रतिष्ठा)
पंचम पत्र

हिन्दी साहित्येतिहास में प्रयोगवादी काव्य धारा के प्रवर्तक के तौर पर अज्ञेय जी का विशिष्ट स्थान है। प्रयोगवाद का आगाज़ उस 'तारसप्तक' के प्रकाशन से माना जाता है, जिसका संपादकत्व 1943 ई० में अज्ञेय ने किया था। इसमें जिन सात कवियों की कविताएँ संकलित थीं वे निम्न थे - गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा एवं अज्ञेय। तारसप्तक के प्रकाशन से जिस प्रयोगवादी काव्यधारा का श्रीगणेश हुआ, आगे चलकर उसी का विकास 'नई कविता' के रूप में हुआ।

प्रयोगवादी काव्यधारा के कवि 'प्रयोगधर्मिता' को साध्य मानते हैं। ये कवि पुरानी परंपराओं को नकारते हुए उन्हें निरर्थक

मानते हैं और प्रयोग को ही एक मात्र इष्ट मानते हैं। आलोचकों का एक वर्ग यह स्वीकार करता है कि प्रयोगधर्मिता ही प्रयोगवादी काव्य का इष्ट है। भाषा शिल्प, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, उपमान आदि की दृष्टि से नये प्रयोग इन कवियों ने किए। अज्ञेय का कहना था कि, "तार सप्तक के कवि किसी एक स्कूल के कवि नहीं हैं, वे राही हैं राही नहीं, राहों के अन्वेषी। सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी अलग-2 राय है। तथापि काव्य के प्रति एक अन्वेषी दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है।"

अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता ही थी कि तारसप्तक के कवि प्रकाश में आए। स्वयं अज्ञेय के भी अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित - चिन्ता, इत्यलम, भग्नदूत, हरी घास पर क्षण भर, अरी ओ करुणा प्रभामय, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, आँगन के पार द्वार प्रकाश में

आ चुके थे।

कवि के समक्ष सर्वाधिक बड़ी समस्या सम्प्रेषणीयता की थी। अज्ञेय की मान्यता थी कि पुरानी भाषा, पुराने शब्द उपमान, प्रतीक, बिम्ब वर्तमान संवेदनाओं एवं भावानुभूतियों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम नहीं हैं। इसलिए कवि को नई भाषा की तलाश रहती है, वह नए उपमान खोजता था एवं नए प्रतीकों एवं बिम्बों की खोज करता है। इसी को आलोचकों ने प्रयोगधर्मिता कहा है। अपनी प्रेयसी के सौंदर्य को अभिव्यक्त करने के लिए कवि अज्ञेय ने पुराने उपमानों व प्रतीकों को त्याग कर नए उपमान व प्रतीक का प्रयोग किया है।

"अगर मैं तुम को ललाती सांझ के नभ की अकेली
तारिका या शरद के भोर की नीहार न्हाई कुंई
टटकी कली चम्पे की
वगैरह अब नहीं कहता।

तो नहीं जाना कि मेरा हृदय
उथला है या कि सूना है।
देवता अब इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"

निरंतर प्रयोग से जैसे बर्तन की कलई उतर जाती है, उसी प्रकार पुराने उपमानों एवं शब्दों का जादू अब समाप्त हो गया है। इसीलिए अज्ञेय अपनी प्रेयसी के लिए नए उपमान ढूढ़ते हैं -

"हरी बिछली घास
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलँगी छरहरी बाजरे की।"

प्रेयसी की स्निग्धता हरी दूब जैसी है और उसकी कोमल क्षीण छरहरी काया बाजरे की कलँगी के सदृश्य उसे लगती है -

"तुम्हारी देह
मुझको कनक चंपे की कली है
दूर से ही
स्मरण में भी गन्ध देती है।"

दूसरे सप्तक में कवि अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि – "प्रयोग अपने आप में कुछ नहीं है, वरन् वह दोहरा साधन है। एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है।"

वस्तुतः कवि को अपनी अनुभूतियों को पाठक तक संप्रेषित करने के लिए तमाम तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उसे लगता है कि पुरानी भाषा और पुराने उपमान उसकी संवेदना को पाठकों तक आधे-अधूरे रूप में प्रेषित कर पा रहे हैं। अतः वह अपने अनुभूत सत्य को पाठक के मन में उतार देने के लिए निरंतर साधन की तलाश में रहता है। प्रयोगधर्मिता ऐसी अन्वेषण का नतीजा है।